

## Chapter तिरासी

### कृष्ण की रानियों से द्रौपदी की भेंट

इस अध्याय में उस वार्ता का वर्णन हुआ है, जो द्रौपदी तथा भगवान् कृष्ण की पटरानियों के बीच हुई, जिसमें हर रानी यह बतलाती है कि भगवान् ने किस प्रकार उनके साथ ब्याह किया।

गोपियों से मिलने के बाद श्रीकृष्ण ने लौट कर राजा युधिष्ठिर तथा उनके अन्य सम्बन्धियों की कुशल-क्षेम पूछी। उन्होंने उत्तर दिया, “हे नाथ! जिसने एक बार भी अपने कानों को आपकी लीलाओं के मधु से आपूरित कर लिया है, वह दुर्भाग्य को जानता ही नहीं।”

तत्पश्चात् द्रौपदी ने भगवान् कृष्ण की पत्नियों से पूछा कि भगवान् ने किस तरह उनसे विवाह किया? सर्वप्रथम महारानी रुक्मिणी बोलीं, “जरासन्ध आदि अनेक राजा मुझे शिशुपाल को प्रदान करने पर तुले थे। इसलिए वे मेरी शादी के समय अपने हाथों में धनुष धारण किये किसी विपक्षी के विरुद्ध शिशुपाल की सहायता करने के लिए सन्नद्ध थे। किन्तु कृष्ण आये और बलपूर्वक मुझे उसी तरह ले गये, जिस तरह बकरियों तथा भेड़ों के बीच से सिंह अपना शिकार ले जाता है।”

रानी सत्यभामा ने कहा, “जब मेरे चाचा प्रसेन मार डाले गये, तो मेरे पिता सत्राजित ने कृष्ण पर हत्या का झूठा आरोप लगाया। अपने नाम को निष्कलंक करने के लिए कृष्ण ने जाम्बवान को हराया, स्यमन्तक मणि प्राप्त की और उसे लाकर सत्राजित को दे दी। मेरे पिता को पछतावा हुआ, अतः उन्होंने वह मणि तथा उसी के साथ मुझको भी उनके हाथों सौंप दिया।”

रानी जाम्बवती ने कहा, “जब श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणि की खोज करते-करते मेरे पिता की गुफा में घुसे, तो पहले तो मेरे पिता जाम्बवान यह समझ ही नहीं पाये कि वे कौन थे। अतएव मेरे पिता

उनसे सत्ताइस दिनों और रातों तक निरन्तर युद्ध करते रहे। अन्त में जाम्बवान को समझ में आया कि कृष्ण अन्य कोई न होकर, उनके आराध्य भगवान् रामचन्द्र हैं। इस तरह उन्होंने कृष्ण को मेरे सहित स्यमन्तक मणि दे दी।”

कालिन्दी ने कहा, “मुझे कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए कठिन तपस्या करनी पड़ी। एक दिन भगवान् कृष्ण अर्जुन के साथ मेरे पास आये और उस समय भगवान् ने मुझसे ब्याह करना स्वीकार कर लिया।”

मित्रविन्दा ने कहा, “श्रीकृष्ण मेरे स्वयंवर उत्सव में आये थे, जहाँ वे विरोध कर रहे सारे राजाओं को हराकर, मुझे अपनी नगरी द्वारका ले गये।”

महारानी सत्या ने कहा, “मेरे पिता ने यह प्रण ठान रखा था कि जो कोई सात बलशाली साँड़ों को वश में करके उन्हें बाँध लेगा, उसी को मेरा हाथ देंगे। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए भगवान् कृष्ण ने खेल खेल में ही उनका दमन किया और विवाह के सारे प्रतिद्वन्दी इच्छुकों को हराकर मुझे ब्याहा।”

रानी भद्रा ने कहा, “मेरे पिता ने अपने भांजे कृष्ण को निमंत्रण दिया, क्योंकि मैं पहले ही उन्हें अपना दिल दे चुकी थी। अतः उन्होंने मुझे उनकी दुलहन के रूप में सौंप दिया। दहेज में पूरी सैनिक टुकड़ी तथा मेरी अनेक सहेलियाँ दी गई थीं।”

रानी लक्ष्मणा ने द्रौपदी से कहा, “मेरे स्वयंवर में तुम्हारे ही स्वयंवर की तरह छत से एक मछली बाँध दी गई थी। लेकिन वह मछली चारों ओर से ढक दी गई थी। केवल उसकी छाया नीचे जल-भरे पात्र में देखी जा सकती थी। कई राजाओं ने बाण से मछली को बेधना चाहा, किन्तु ऐसा कर नहीं पाये। तब अर्जुन ने प्रयास किया। उन्होंने जल में मछली की छाया पर निशाना साध कर, जब बाण छोड़ा, तो वह लक्ष्य को केवल छूता हुआ निकल गया। तब श्रीकृष्ण ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और ऐसा निशाना लगाया कि मछली जमीन पर आ गिरी। मैंने विजयमाला श्रीकृष्ण के गले में डाल दी, किन्तु जो राजा असफल हुए थे उन्होंने तीव्र विरोध किया। भगवान् कृष्ण उनसे वीरतापूर्वक लड़े और उनमें से कइयों के सिर, भुजाएँ तथा पाँव काट डाले और जो बचे वे अपनी जान लेकर भाग गये। तब भगवान् भव्य विवाह करने के लिए मुझे द्वारका ले गये।”

रोहिणीदेवी ने अन्य सभी रानियों की ओर से बतलाया कि वे भौमासुर द्वारा पराजित राजाओं की

कन्याएँ थीं। उस असुर ने उन्हें बन्दी बना रखा था, किन्तु जब भगवान् कृष्ण ने उसे मार कर सबों को छुड़ाया, तो उन्होंने उन सबों के साथ विवाह कर लिया।

श्रीशुक उवाच

तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ।

युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वाश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तथा—इस तरह से; अनुगृह्य—अनुग्रह दिखलाकर; भगवान्—भगवान् ने; गोपीनाम्—तरुण गोपियों के; सः—वह; गुरुः—उनका गुरु; गतिः—तथा लक्ष्य; युधिष्ठिरम्—युधिष्ठिर से; अथ—तब; अपृच्छत्—पूछा; सर्वान्—सबों के; च—तथा; सु-हृदः—अपने शुभचिन्तक परिवार वालों; अव्ययम्—कुशल-क्षेम।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह गोपियों के आध्यात्मिक गुरु तथा उनके जीवन के गन्तव्य भगवान् कृष्ण ने उन पर अपनी कृपा प्रदर्शित की। तत्पश्चात् वे युधिष्ठिर तथा अपने अन्य सभी सम्बन्धियों से मिले और उनसे उनकी कुशलता पूछी।

तात्पर्य : यहाँ पर गुरुर्गतिः शब्दों का “गुरु तथा गन्तव्य” के रूप में किया गया है। किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक और अर्थ दिया है। जहाँ भगवान् कृष्ण सामान्यतः सभी साधुओं के लक्ष्य हैं, वहीं गोपियों के लिए वे विशेष रूप से वह गन्तव्य हैं, जो गुरु है—इस बात में “प्रधान” हैं क्योंकि अन्य सारे सम्भावित गन्तव्यों को वे पूरी तरह ग्रस लेते हैं।

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ।

प्रत्यूचूर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

**शब्दार्थ**

ते—वे ( युधिष्ठिर तथा भगवान् कृष्ण के अन्य सम्बन्धी ); एवम्—इस प्रकार; लोक—ब्रह्माण्ड के; नाथेन—स्वामी द्वारा; परिपृष्टाः—पूछे जाकर; सु—अत्यधिक; सत्-कृताः—सम्मानित; प्रत्यूचुः—उत्तर दिया; हृष्ट—प्रसन्न; मनसः—मन वाले; तत्—उसका; पाद—पैर; ईक्षा—देखने से; हत—विनष्ट; अंहसः—जिसके पाप।

ब्रह्माण्ड के स्वामी के चरणों को देखकर समस्त पापों से मुक्त राजा युधिष्ठिर तथा अन्यो ने अत्यधिक सम्मानित अनुभव करते हुए उनके प्रश्नों का खुशी खुशी उत्तर दिया।

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं

महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ।

पिबन्ति ये कर्णापुटैरलं प्रभो

देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥

## शब्दार्थ

कुतः—कहाँ से; अशिवम्—अशुभ; त्वत्—तुम्हारे; चरण—पाँवों के; अम्बुज—कमलवत्; आसवम्—मदोन्मत्तकारी अमृत को; महत्—महात्माओं के; मनस्तः—मनों से; मुख—उनके मुँहों से होकर; निःसृतम्—निकला हुआ; क्वचित्—किसी समय; पिबन्ति—पीते हैं; ये—जो; कर्ण—उनके कानों के; पुटैः—प्यालों से; अलम्—इच्छानुसार; प्रभो—हे प्रभु; देहम्—भौतिक शरीर; भृताम्—धारण करने वालों के लिए; देह—देहों के; कृत्—स्रष्टा के विषय में; अस्मृति—विस्मरण के; छिदम्—उच्छेदक।

[ भगवान् कृष्ण के सम्बन्धियों ने कहा ] : हे प्रभु, उन लोगों का अमंगल कैसे हो सकता है, जिन्होंने आपके चरणकमलों से निकले अमृत का छक कर पान किया हो? यह मदोन्मत्तकारी तरल बड़े बड़े भक्तों के मनो से बहता हुआ, उनके मुखों से निकल कर, उनके कान रूपी प्यालों में उड़ेला जाता है। यह देहधारी जीवात्माओं द्वारा अपने शरीर के बनाने वाले के प्रति विस्मृति को विनष्ट करता है।

हि त्वात्म धामविधुतात्मकृतत्र्यवस्था-

मानन्दसम्प्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ।

कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोग-

मायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥

## शब्दार्थ

हि—निस्सन्देह; त्वा—तुमको; आत्म—आपके साकार रूप का; धाम—प्रकाश द्वारा; विधुत—दूर किया हुआ; आत्म—भौतिक चेतना द्वारा; कृत—उत्पन्न; त्रि—तीन; अवस्थाम्—भौतिक अवस्थाएँ; आनन्द—आनन्द में; सम्प्लवम्—( जिसके भीतर ) पूर्णतया निमग्न; अखण्डम्—अनन्त; अकुण्ठ—अनियंत्रित; बोधम्—जिसका ज्ञान; काल—समय द्वारा; उपसृष्ट—संकटग्रस्त; निगम—वेदों के; अवने—संरक्षण के लिए; आत्त—धारण करते हुए; योग-माया—अपनी योगमाया द्वारा; आकृतिम्—इस स्वरूप को; परम-हंस—पूर्ण-सन्तों के; गतिम्—लक्ष्य को; नताः स्म—( हम ) नतमस्तक हैं।

आपके स्वरूप का तेज भौतिक चेतना के त्रिगुण प्रभावों को दूर करता है और आपके अनुग्रह से हम पूर्ण सुख में निमग्न हो जाते हैं। आपका ज्ञान अविभाज्य तथा असीम है। अपनी योगमाया शक्ति से आपने उन वेदों की रक्षा करने के लिए यह मानव रूप धारण किया है, जो कालक्रम से संकटग्रस्त हो गये थे। हे पूर्ण-सन्तों के चरम लक्ष्य, हम आपके समक्ष नतमस्तक हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के सुन्दर स्वरूप से निकलने वाले तेजोमय प्रकाश से ही मनुष्य की बुद्धि सारे भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाती है। इस तरह सतो, रजो तथा तमो गुणों में आत्मा के विविध बन्धन छूट जाते हैं। भगवान् के सम्बन्धियों के कहने का मन्तव्य है कि “तब भला कभी भी हमारा अमंगल कैसे हो सकता है? हम सदैव परम सुख में निमग्न रहते हैं।” कृष्ण द्वारा कुशल-क्षेम पूछे

जाने पर यही उनका उत्तर था।

श्रीऋषिरुवाच

इत्युत्तमःश्लोकशिखामणिं जने-  
ष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।  
समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृहं-  
स्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—ऋषि, शुकदेव ने कहा; इति—इस प्रकार; उत्तमः-श्लोक—महापुरुषों के जिनका यशोगान उत्तम श्लोकों द्वारा किया जाता है; शिखा-मणिम्—शिरोमणि ( भगवान् कृष्ण ); जनेषु—अपने भक्तों में; अभिष्टुवत्सु—महिमागान करते हुए; अन्धक-कौरव—अन्धक तथा कौरव वंशों की; स्त्रियः—स्त्रियाँ; समेत्य—मिल कर; गोविन्द-कथाः—भगवान् गोविन्द की कथाएँ; मिथः—परस्पर; अगृहन्—कहा; त्रि—तीन; लोक—लोकों में; गीताः—गाई गई; शृणु—सुनो; वर्णयामि—मैं वर्णन करूँगा; ते—तुमसे ( परीक्षित महाराज से )।

ऋषिवर शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब युधिष्ठिर तथा अन्य लोग महापुरुषों में शिरोमणि भगवान् कृष्ण की इस तरह प्रशंसा कर रहे थे, तो अन्धक तथा कौरव वंश की महिलाएँ एक-दूसरे से मिलीं और तीनों लोकों में गाई जाने वाली गोविन्द विषयक कथाओं की चर्चा करने लगीं। कृपया सुनो, क्योंकि मैं तुमसे इनका वर्णन करने जा रहा हूँ।

श्रीद्रौपद्युवाच

हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौशले ।  
हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥  
हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूते वो भगवान्स्वयम् ।  
उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-द्रौपदी उवाच—श्री द्रौपदी ने कहा; हे वैदर्भि—हे विदर्भ-पुत्री ( रुक्मिणी ); अच्युतः—भगवान् कृष्ण; भद्रे—हे भद्रा; हे जाम्बवति—हे जाम्बवान-पुत्री; कौशले—हे नागजिती; हे सत्यभामे—हे सत्यभामा; कालिन्दि—हे कालिन्दी; शैब्ये—हे मित्रविन्दा; रोहिणि—हे रोहिणी ( नरकासुर के वध के बाद सोलह हजार एक सौ रानियों में से एक, जिसके साथ कृष्ण ने ब्याह किया था ); लक्ष्मणे—हे लक्ष्मणा; हे कृष्ण-पत्न्यः—हे कृष्ण की ( अन्य ) पत्नियो; एतत्—यह; नः—हमसे; ब्रूते—कहें; वः—तुम; भगवान्—भगवान् ने; स्वयम्—साक्षात्; उपयेमे—ब्याहा; यथा—कैसे; लोकम्—सामान्य समाज; अनुकुर्वन्—अनुकरण करते हुए; स्व-मायया—अपनी योगशक्ति से।

श्री द्रौपदी ने कहा : हे वैदर्भी, हे भद्रा, हे जाम्बवती, हे कौशला, हे सत्यभामा तथा कालिन्दी, हे शैब्या, रोहिणी, लक्ष्मणा तथा कृष्ण की अन्य पत्नियो, कृपा करके मुझे बतलाइये कि भगवान् अच्युत ने किस तरह अपनी योगशक्ति से इस संसार की रीति का अनुकरण करते हुए आपमें से हर एक से विवाह किया।

**तात्पर्य :** यहाँ पर द्रौपदी ने जिस रोहिणी को सम्बोधित किया है, वह बलराम की माता नहीं अपितु अन्य रोहिणी है, जो भौमासुर के कारागार से भगवान् कृष्ण द्वारा छुड़ाई गई सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों में अग्रगण्य है। द्रौपदी उसे सोलह हजार एक सौ रानियों की प्रतिनिधि मान कर उसकी ओर अग्रसर होती है। उसे वह श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों के तुल्य ही मानती है।

श्रीरुक्मिण्युवाच

चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु

राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः ।

निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्

तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; चैद्याय—शिशुपाल को; मा—मुझको; अर्पयितुम्—प्रदान करने के लिए; उद्यत—तैयार; कार्मुकेषु—जिनके धनुष; राजसु—जब राजा; अजेय—दुर्जय; भट—सैनिकों के; शेखरित—सिर पर रखे; अङ्घ्रि—जिसके पाँवों की; रेणुः—धूलि; निन्ये—हर ले गया; मृगेन्द्रः—सिंह; इव—मानो; भागम्—अपना हिस्सा; अज—बकरियों; अवि—तथा भेड़ों के; यूथात्—रेवड़ से; तत्—उसका; श्री—लक्ष्मीजी का; निकेत—धाम; चरणः—पाँव; अस्तु—होयें; मम—मेरी; अर्चनाय—पूजा के लिए।

श्री रुक्मिणी ने कहा : जब सारे राजा अपने अपने धनुष लिए यह आश्वासन देने के लिए तैयार खड़े थे कि शिशुपाल को मैं अर्पित कर दी जाऊँ, तो अजेय योद्धाओं के सिरों पर अपनी चरण-धूलि रखने वाले ने उनके बीच में से उसी तरह मेरा हरण कर लिया, जिस तरह एक सिंह अपने शिकार को बकरियों तथा भेड़ों के बीच से बलपूर्वक ले जाता है। मैं चाहूँगी कि लक्ष्मीधाम भगवान् कृष्ण के उन पाँवों की पूजा मुझे करने को मिले।

**तात्पर्य :** कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण लीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत अध्याय ५२ से ५४ तक विस्तार से हुआ है।

श्रीसत्यभामोवाच

यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन

लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ।

जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन

भीतः पितादिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-सत्यभामा उवाच—सत्यभामा ने कहा; यः—जो; मे—मेरा; सनाभि—मेरे भाई के; वध—मारने से; तप्त—दुखी; हृदा—जिसका हृदय; ततेन—मेरे पिता द्वारा; लिप्त—रँगा हुआ; अभिशापम्—गहँगा से; अपमार्ष्टुम्—स्वच्छ करने के लिए;

उपाजहार—हटा दिया; जित्वा—जीत कर; ऋक्ष-राजम्—रीछों के राजा जाम्बवान को; अथ—तब; रत्नम्—(स्यमन्तक)  
मणि; अदात्—दे दिया; सः—उसने; तेन—इसके कारण; भीतः—भयभीत; पिता—मेरे पिता; अदिशत—अर्पित कर दिया;  
माम्—मुझको; प्रभवे—प्रभु को; अपि—यद्यपि; दत्ताम्—पहले ही प्रदत्त।

श्री सत्यभामा ने कहा : मेरे पिता का हृदय अपने भाई की हत्या से दुःखित था, इसलिए उन्होंने भगवान् कृष्ण को इस अपराध के लिए दोषी ठहराया। भगवान् ने अपने यश पर लगे इस धब्बे को मिटाने के लिए रीछों के राजा को हराया और स्यमन्तक मणि वापस लेकर उसे मेरे पिता को लौटा दिया। अपने अपराध के फल से भयभीत मेरे पिता ने मुझे भगवान् को प्रदान कर दिया, यद्यपि मुझे अन्यों को दिये जाने का वायदा (वाग्दान) किया जा चुका था।

तात्पर्य : इस स्कन्ध के छप्पनवें अध्याय में वर्णन हो चुका है कि राजा सत्राजित ने अपनी पुत्री का हाथ पहले अक्रूर को और बाद में स्वयंवर में आये अनेक राजकुमारों को देने का वायदा करके अपने आपसे समझौता कर लिया था। किन्तु जब स्यमन्तक मणि लौट आया तो लज्जावश प्रेरित होकर उसने अपनी पुत्री भगवान् कृष्ण को अर्पित कर दी। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार प्रभवे (भगवान् को) शब्द से उस शंका का समाधान हो जाता है, जिसमें दूसरों को वचन द्वारा दी गई वधू को कृष्ण को अर्पित करने के औचित्य की बात उठाई जाती है। यह एकदम उचित है कि मनुष्य के पास जो भी वस्तु हो वह उन्हें अर्पित की जाय तथा उनसे किसी वस्तु को रोके रखना अनुचित है।

श्रीजाम्बवत्युवाच

प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदैवं

सीतापतिं त्रिनवहान्यमुनाभ्ययुध्यत् ।

ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां

पादौ प्रगृह्य मणिनाहममुष्य दासी ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-जाम्बवती उवाच—श्री जाम्बवती ने कहा; प्राज्ञाय—अनभिज्ञ; देह—शरीर का; कृत्—बनाने वाला (मेरा पिता); अमुम्—उसको; निज—अपना; नाथ—स्वामी रूप; दैवम्—तथा पूज्य देव; सीता—देवी सीता के; पतिम्—पति को; त्रि—तीन; नव—गुणे नौ; अहानि—दिन; अमुना—उसके साथ; अभ्ययुध्यत्—युद्ध किया; ज्ञात्वा—पहचान कर; परीक्षितः—ठीक से जानकर; उपाहरत्—भेंट कर दिया; अर्हणम्—सादर भेंट तुल्य; माम्—मुझको; पादौ—उनके चरणों को; प्रगृह्य—पकड़ कर; मणिना—मणि के साथ; अहम्—मैं; अमुष्य—उसकी; दासी—नौकरानी।

श्री जाम्बवती ने कहा : यह न जानते हुए कि भगवान् कृष्ण उन्हीं के स्वामी तथा आराध्यदेव, देवी सीता के पति हैं, मेरे पिता उनके साथ सत्ताईस दिनों तक युद्ध करते रहे। अन्त

में जब मेरे पिता को ज्ञान हुआ और उन्होंने प्रभु को पहचाना, तो उन्होंने उनके चरण पकड़ लिये और मुझे तथा स्यमंतक मणि दोनों को आदर के प्रतीक रूप में अर्पित कर दिया। मैं तो प्रभु की दासी मात्र हूँ।

तात्पर्य : जाम्बवान् कई हजारों वर्ष पूर्व भगवान् रामचन्द्र का सेवक था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इसका उल्लेख करते हैं कि जाम्बवती की कथा सुनते हुए वहाँ पर उपस्थित स्त्रियों ने उसे उस लड़की के रूप में पहचान लिया जिसे जाम्बवान् ने एक बार भगवान् राम को उनकी पत्नी के रूप में प्रदान किया था। चूँकि राम ने एक पत्नी-व्रत धारण कर रखा था इसलिए तब उसे वे स्वीकार नहीं कर सके किन्तु जब वे द्वापर युग में कृष्ण के रूप में वापस आये तो उन्होंने ऐसा किया। अन्य रानियों ने इसके लिये जाम्बवती को सम्मान देना चाहा किन्तु उसने विनीत भाव से उत्तर दिया, “मैं तो भगवान् की दासी मात्र हूँ।”

जाम्बवती तथा सत्यभामा किस तरह कृष्ण की पत्नियाँ बनीं इसका वर्णन दशम स्कंध के छप्पनवें अध्याय में किया जा चुका है।

श्रीकालिन्दुवाच

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ।

सख्योपेत्याग्रहीत्याणि योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-कालिन्दी उवाच—श्री कालिन्दी ने कहा; तपः—तपस्या; चरन्तीम्—करते हुए; आज्ञाय—जानते हुए; स्व—उनके; पाद—पैरों के; स्पर्शन—स्पर्श की; आशया—इच्छा से; सख्या—अपने मित्र ( अर्जुन ) सहित; उपेत्य—आकर; अग्रहीत्—ग्रहण किया; पाणिम्—मेरा हाथ; यः—जो; अहम्—मैं; तत्—उसके; गृह—घर की; मार्जनी—बुहारने वाली।

श्री कालिन्दी ने कहा : भगवान् जानते थे कि मैं इस आशा से कठिन तपस्या कर रही हूँ कि एक दिन मुझे उनके चरणकमल स्पर्श करने को मिलेंगे। अतएव वे अपने मित्र के साथ मेरे पास आये और मेरा पाणिग्रहण किया। अब मैं उनके महल को बुहारने वाली दासी के रूप में लगी रहती हूँ।

श्रीमित्रविन्दोवाच

यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्

निन्द्ये श्वयूथगं इवात्मबलिं द्विपारिः ।



भ्रातृंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुंरं श्रियौक-

स्तस्यास्तु मेऽनुभवमद्भ्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥

### शब्दार्थ

श्री-मित्रविन्दा उवाच—श्री मित्रविन्दा ने कहा; यः—जो; माम्—मुझको; स्वयं-वरे—मेरे स्वयंवर के समय ( उत्सव जिसमें राजकुमारी कई योग्य वरों में से पति का वरण करती है ); उपेत्य—आकर; विजित्य—हराकर; भू-पान्—राजाओंको; निन्द्ये—ले गया; श्व—कुत्तों के; यूथ—समूह में; गम्—गया हुआ; इव—मानो; आत्म—निजी; बलिम्—भाग को; द्विप-अरिः—हाथियों का शत्रु, सिंह; भ्रातृन्—भाइयों को; च—तथा; मे—मेरा; अपकुरुतः—उनकी निन्दा करने वाले; स्व—अपनी; पुम्—राजधानी; श्री—लक्ष्मी के; ओकः—निवास; तस्य—उसका; अस्तु—होए; मे—मेरे लिए; अनु-भवम्—जन्म-जन्मांतर; अद्भि—पाँव; अवनेजनत्वम्—प्रक्षालन करने का पद।

श्री मित्रविन्दा ने कहा : मेरे स्वयंवर समारोह में वे आगे बढ़ आये, वहाँ पर उपस्थित सारे राजाओं को, जिनमें उनका अपमान करने का दुस्साहस करने वाले मेरे भाई भी थे, हरा दिया और मुझे उसी तरह उठा ले गये, जिस तरह सिंह कुत्तों के झुंड में से अपना शिकार उठा ले जाता है। इस तरह लक्ष्मीनिवास भगवान् कृष्ण मुझे अपनी राजधानी में ले आये। मैं चाहती हूँ कि मुझे जन्म-जन्मांतर उनके चरण धोने की सेवा करने का अवसर मिलता रहे।

### श्रीसत्योवाच

सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्

पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ।

तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य

क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥

य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरनिगामीम् ।

पथि निर्जित्य राजन्यान्निये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥

### शब्दार्थ

श्री-सत्या उवाच—श्री सत्या ने कहा; सप्त—सात; उक्षणः—साँड़; अति—विशाल; बल—बलवान्; वीर्य—तथा वीर्यवान्; सु—अत्यधिक; तीक्ष्ण—पैने; शृङ्गान्—जिनके सींगों को; पित्रा—मेरे पिता द्वारा; कृतान्—बनाये गये; क्षितिप—राजाओं के; वीर्य—पराक्रम के; परीक्षणाय—परीक्षा लेने के लिए; तान्—उन ( साँड़ों ) को; वीर—वीरों के; दुर्मद—मिथ्या अहंकार को; हनः—विनष्ट करने वाले; तरसा—फुर्ती से; निगृह्य—दमन करके; क्रीडन्—खेल करते हुए; बबन्ध ह—बाँध लिया; यथा—जिस तरह; शिशवः—बच्चे; अज—बकरी के; तोकान्—बच्चों को; यः—जो; इत्थम्—इस तरह; वीर्य—बहादुरी; शुल्काम्—मूल्य वाले; माम्—मुझको; दासीभिः—दासियों समेत; चतुः-अङ्गिणीम्—चार टुकड़ियों ( रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल ) वाली सेना से सुरक्षित; पथि—रास्ते में; निर्जित्य—हराकर; राजन्यान्—राजाओं को; निन्द्ये—मुझे उठा ले गये; तत्—उनके प्रति; दास्यम्—दास्य भाव; अस्तु—होए; मे—मेरा।

श्री सत्या ने कहा : मेरे पिता ने मेरे साथ पाणिग्रहण के इच्छुक राजाओं के पराक्रम की परीक्षा लेने के लिए घातक पैने सींगों वाले सात अत्यन्त बलशाली तथा जोशीले साँड़ों की व्यवस्था की। यद्यपि ये साँड़ अनेक वीरों के मिथ्या गर्व को चूर-चूर कर चुके थे, किन्तु भगवान् कृष्ण ने बिना प्रयास के ही उन्हें वश में करके बाँध लिया, जिस तरह बच्चे खेल-खेल

में बकरी के बच्चों को बाँध लेते हैं। इस तरह उन्होंने मुझे अपने शौर्य के बल पर मोल ले लिया। तत्पश्चात् वे मेरे मार्ग में विरोध करने वाले सारे राजाओं को हराते हुए मुझे मेरी दासियों तथा चतुरंगिणी सेना समेत ले गये। मेरी यही अभिलाषा है कि उन प्रभु की सेवा करने का सुअवसर मुझे प्राप्त होता रहे।

श्रीभद्रोवाच

पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ।

कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भद्रा उवाच—श्री भद्रा ने कहा; पिता—पिता ने; मे—मेरे; मातुलेयाय—मेरे मामा के पुत्र को; स्वयम्—स्वेच्छा से; आहूय—बुलाकर; दत्तवान्—दिया; कृष्णे—हे कृष्णा (द्रौपदी); कृष्णाय—भगवान् कृष्णको; तत्—जिसमें समाया; चित्ताम्—जिसका हृदय; अक्षौहिण्या—एक अक्षौहिणी सैनिक रक्षक सहित; सखी-जनैः—अपनी सखियों के साथ; अस्य—उसका; मे—मेरे लिए; पाद—पाँवों का; संस्पर्शः—स्पर्श; भवेत्—शायद हो; जन्मनि जन्मनि—जन्म-जन्मांतर तक; कर्मभिः—भौतिक कार्यों के फलस्वरूप; भ्राम्यमाणायाः—जो घूम रहा होगा; येन—जिससे; तत्—वह; श्रेयः—चरम सिद्धि; आत्मनः—अपने को।

श्री भद्रा ने कहा : हे द्रौपदी, मेरे पिता ने स्वयं ही मेरे मामा के पुत्र कृष्ण को बुलाया था, जिन्हें मैं पहले ही अपना हृदय सौंप चुकी थी और उन्होंने मुझे उनकी दुलहन के रूप में अर्पित कर दिया। मेरे पिता ने मेरे साथ उन्हें एक अक्षौहिणी सैन्य रक्षक और मेरी सखियों की एक टोली भी दी थी। मेरी चरम सिद्धि यही होगी कि जब मैं अपने कर्म से बंध कर एक जन्म से दूसरे जन्म में भ्रमण करूँ, तो मुझे भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को स्पर्श करने की अनुमति सदैव मिलती रहे।

तात्पर्य : आत्मनः शब्द के प्रयोग द्वारा रानी भद्रा न केवल अपनी बात कहती है, अपितु सारे जीवों की बात कहती है। आत्मा की सिद्धि (श्रेय आत्मनः) भगवान् कृष्ण की भक्ति है, जिससे इस लोक में तथा इससे परे भी मुक्ति मिलती है।

श्रील जीव गोस्वामी की टीका है कि यद्यपि सुसंस्कृत समाज में अपने गुरु या पति का नाम सबके सामने लेना असम्मानजनक माना जाता है, किन्तु कृष्ण का नाम अद्वितीय है—केवल कृष्ण-नाम का उच्चारण ही ईश्वर के प्रति सर्वाधिक आदर का सूचक है। श्वेताश्वतर उपनिषद (४.१९) में कहा गया

है— यस्य नाम महद् यशः— भगवान् का पवित्र नाम परम यशस्वी है ।

श्रीलक्ष्मणोवाच  
ममापि राज्यच्युतजन्मकर्म  
श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ।  
चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया  
वृतः सुसम्मृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-लक्ष्मणा उवाच— श्री लक्ष्मणा ने कहा; मम—मेरा; अपि—भी; राज्ञि—हे रानी; अच्युत—भगवान् कृष्ण के; जन्म—जन्मों; कर्म—तथा कर्मों के विषय में; श्रुत्वा—सुन कर; मुहुः—बारम्बार; नारद—नारदमुनि द्वारा; गीतम्—उच्चारित; आस ह—बन गया; चित्तम्—मेरा हृदय; मुकुन्दे—मुकुन्द पर ( टिका ); किल—निस्सन्देह; पद्म-हस्तया—हाथ में पद्म धारण किये लक्ष्मी द्वारा; वृतः—चुनी हुई; सु—सावधानीपूर्वक; सम्मृश्य—विचार करके; विहाय—त्याग कर; लोक—लोकों के; पान्—शासकगण को ।

श्री लक्ष्मणा ने कहा : हे रानी, मैंने नारद मुनि को भगवान् अच्युत के अवतारों तथा कार्यों की बारम्बार महिमा गाते सुना और इस तरह मेरा मन भी उन्हीं भगवान् मुकुन्द के प्रति आसक्त हो गया । दरअसल, देवी पद्महस्ता ने विविध लोकों पर शासन करने वाले बड़े बड़े देवताओं को तिरस्कृत करके काफी ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद, उन्हें अपने पति के रूप में चुना है ।

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ।  
बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जान कर; मम—मेरी; मतम्—मानसिकता; साध्वि—हे साधु स्वभाव वाली स्त्री; पिता—मेरा पिता; दुहितृ—अपनी पुत्री के प्रति; वत्सलः—स्नेही; बृहत्सेनः इति ख्यातः—बृहत्सेन के रूप में विख्यात; तत्र—उस दिशा में; उपायम्—साधन की; अचीकरत्—व्यवस्था कर दी ।

मेरे पिता बृहत्सेन स्वभाव से अपनी पुत्री के ऊपर अनुकम्पावान थे और हे साध्वी, यह जानते हुए कि मैं कैसा अनुभव कर रही हूँ, उन्होंने मेरी इच्छा पूरी करने की व्यवस्था कर दी ।

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ।  
अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; स्वयम्-वरे—( तुम्हारे ) स्वयंवर में; राज्ञि—हे रानी; मत्स्यः—एक मछली; पार्थ—अर्जुन को; ईप्सया—प्राप्त करने की इच्छा से; कृतः—( लक्ष्य ) बनाया; अयम्—यह ( मछली ); तु—किन्तु; बहिः—बाहर से; आच्छन्नः—ढकी; दृश्यते—देखा जा सकता था; सः—वह; जले—जल में; परम्—एकमात्र ।

हे रानी, जिस तरह आपके स्वयंवर समारोह में एक मछली का प्रयोग लक्ष्य के तौर पर यह

निश्चित करने के लिए हुआ था कि आप अर्जुन को पति रूप में पा सकें, उसी तरह मेरे स्वयंवर में भी एक मछली का ही प्रयोग हुआ। किन्तु मेरे संबंध में यह मछली चारों ओर से ढक दी गई थी और नीचे रखे जल-पात्र में इसका प्रतिबिम्ब ही देखा जा सकता था।

तात्पर्य : अर्जुन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के रूप में विख्यात हैं। तो फिर वे श्रीमती लक्ष्मणा के स्वयंवर में उसी तरह मत्स्य-बेध क्यों नहीं कर सके, जिस तरह एक बार पहले द्रौपदी को जीतने के समय किया था? श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं: द्रौपदी के स्वयंवर में लक्ष्य को अंशतः ढका गया था जिससे बेधने वाला उसे देख सकता था, यदि वह उस स्तम्भ जिस पर वह रखी थी को सीधे ऊपर की ओर देखता। किन्तु लक्ष्मणा के लक्ष्य-वेध के लिए एक साथ ऊपर-नीचे देख कर निशाना लगाना आवश्यक था, जो किसी भी मनुष्य के लिए असम्भव कौशल था। इसीलिए उस लक्ष्य को केवल कृष्ण ही बेध सके।

श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ।

सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; एतत्—इसके; सर्वतः—चारों ओर से; भू-पाः—राजागण; आययुः—आये; मत्—मेरे; पितुः—पिता के; पुरम्—नगर में; सर्व—समस्त; अस्त्र—तीर जैसे हथियार; शस्त्र—तथा अन्य हथियार; तत्त्व—विज्ञान के; ज्ञाः—कुशल ज्ञाता; स—सहित; उपाध्यायाः—अपने अपने गुरुओं; सहस्रशः—हजारों में।

यह सुन कर बाण चलाने तथा अन्य हथियारों को उपयोग में लाने में दक्ष हजारों राजा अपने सैन्य शिक्षकों के साथ मेरे पिता के नगर में सभी दिशाओं से एकत्र हुए।

पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ।

आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्भियः ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

पित्रा—मेरे पिता द्वारा; सम्पूजिताः—पूर्णतया आदरित; सर्वे—सारे जन; यथा—अनुरूप; वीर्यम्—शक्ति के; यथा—अनुरूप; वयः—आयु के; आददुः—उठा लिया; स—सहित; शरम्—बाण; चापम्—धनुष; वेद्धुम्—( लक्ष्य ) बेधने के लिए; पर्षदि—सभा में; मत्—मुझ पर ( स्थिर ); भियः—मनों वाले।

मेरे पिता ने हर राजा को उसके बल तथा वरिष्ठता के अनुसार उचित सम्मान दिया। तब जिन लोगों के मन मुझ पर टिके थे, उन्होंने अपना धनुष-बाण उठाया और सभा के मध्य एक-एक करके, लक्ष्य को बेधने का प्रयत्न करने लगे।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार केवल वे ही राजा जो राजकुमारी को पाने पर पूरी तरह मन बना चुके थे लक्ष्य-बेध करने का साहस जुटा पाये।

आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ।

आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुनाहताः ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

आदाय—उठाकर; व्यसृजन्—जाने दिया; केचित्—उनमें से कुछ ने; सज्यम्—डोरी; कर्तुम्—चढ़ाने में; अनीश्वराः—असमर्थ; आ-कोष्ठम्—( धनुष के ) सिरे तक; ज्याम्—धनुष की डोरी को; समुत्कृष्य—खींच कर; पेतुः—गिर पड़े; एके—कुछ; अमुना—इस ( धनुष ) से; हताः—चोट खाये।

उनमें से कुछ ने धनुष उठाया, किन्तु उसकी डोरी नहीं चढ़ा सके, अतएव हताश होकर उन्होंने उसे एक ओर फेंक दिया। कुछ ने धनुष की डोरी को धनुष के एक सिरे तक खींच तो लिया, किन्तु इससे धनुष पीछे उछला और उन्हें ही जमीन पर पटक दिया।

सज्यं कृत्वापरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ।

भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविदंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

सज्यम्—साज; कृत्वा—करके; अपरे—अन्य; वीराः—वीर पुरुष; मागध—मगध का राजा ( जरासन्ध ); अम्बष्ठ—अम्बष्ठ का राजा; चेदि-पाः—चेदि का शासक ( शिशुपाल ); भीमः दुर्योधनः कर्णः—भीम, दुर्योधन तथा कर्ण; न अविदन्—नहीं ढूँढ़ पाये; तद्—इस ( लक्ष्य ) की; अवस्थितिम्—स्थिति, स्थान।

कुछ वीर यथा जरासन्ध, शिशुपाल, भीम, दुर्योधन, कर्ण तथा अम्बष्ठराज धनुष पर डोरी चढ़ाने में सफल तो रहे, किन्तु इनमें से कोई भी लक्ष्य को ढूँढ़ नहीं सका।

तात्पर्य : ये राजा शरीर से अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट थे किन्तु लक्ष्य ढूँढ़ने में काफी दक्ष नहीं थे।

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ।

पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

मत्स्य—मछली की; आभासम्—परछाई; जले—जल में; वीक्ष्य—देखकर; ज्ञात्वा—जान कर; च—तथा; तत्—उसकी; अवस्थितिम्—स्थिति; पार्थः—अर्जुन ने; यत्तः—सावधानी से निशाना लगाते हुए; असृजत्—छोड़ा; बाणम्—बाण; न अच्छिनत्—बेधा नहीं; पस्पृशे—छुआ; परम्—केवल।

तब अर्जुन ने जल में मछली की परछाई की ओर देखा और उसकी स्थिति निर्धारित की। किन्तु जब उसने सावधानी से उस पर अपना बाण छोड़ा, तो वह लक्ष्य को बेध नहीं पाया, अपितु मात्र उसको स्पर्श करके निकल गया।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या के अनुसार अर्जुन अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक कुशल निशानेबाज था, किन्तु उसकी शारीरिक शक्ति पर्याप्त न थी कि वह उसे बिल्कुल ठीक तरह से बेध सकता।

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ।  
 भगवान्धनुरादाय सच्यं कृत्वाथ लीलया ॥ २५ ॥  
 तस्मिन्सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ।  
 छित्त्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

राजन्येषु—जब राजाओं ने; निवृत्तेषु—त्याग दिया; भग्न—पराजित; मानेषु—जिनका गर्व; मानिषु—घमंडी; भगवान्—भगवान् ने; धनुः—धनुष; आदाय—लेकर; सच्यम् कृत्वा—डोरी चढ़ाकर; अथ—तब; लीलया—खेल-खेल में; तस्मिन्—उसमें; सन्धाय—स्थिर करके; विशिखम्—बाण; मत्स्यम्—मछली को; वीक्ष्य—देखकर; सकृत्—केवल एक बार; जले—जल में; छित्त्वा—भेद कर; इषुणा—बाण से; अपातयत्—गिरा दिया; तम्—उसको; सूर्ये—जब सूर्य; च—तथा; अभिजिते—अभिजित नक्षत्र में; स्थिते—स्थित।

जब सारे दम्भी राजाओं का घमंड चूर-चूर हो गया और उन्होंने यह प्रयास त्याग दिया, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने धनुष उठाया, आसानी से डोरी चढ़ाई और तब उस पर बाण स्थिर किया। ज्योंही सूर्य अभिजित नक्षत्र में आया, तो उन्होंने जल में मछली को केवल एक बार देखा और फिर उसे बाण से बेध कर जमीन पर गिरा दिया।

तात्पर्य : प्रतिदिन सूर्य एक बार अभिजित नक्षत्र से होकर गुजरता है, जिससे वह समय विजय के लिए सबसे शुभ हो जाता है। जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इंगित किया है कि इस विशेष दिन अभिजित मुहूर्त मध्याह्न से मेल खा रहा था, जिससे भगवान् कृष्ण की महानता की और भी पुष्टि होती है, क्योंकि इससे निशाने को देख पाना और भी कठिन हो जाता है।

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ।  
 देवाश्च कुसुमासारान्मुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

दिवि—आकाश में; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; नेदुः—ध्वनि करने लगीं; जय—विजय; शब्द—ध्वनि; युताः—के साथ; भुवि—पृथ्वी पर; देवाः—देवतागण; च—तथा; कुसुम—फूलों की; आसारान्—वर्षा; मुचुः—उन्मुक्त की; हर्ष—हर्ष से; विह्वलाः—विह्वल।

आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और पृथ्वी पर लोग जय! जय! की ध्वनि करने लगे। देवताओं ने अति प्रसन्न होकर फूल बरसाये।

तद्रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां  
 पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोड्ज्वलरत्नमालाम् ।  
 नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाछये  
 सव्रीडहासवदना कवरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—तब; रङ्गम्—रंगशाला में; आविशम्—प्रविष्ट हुई; अहम्—मैं; कल—मधुर ध्वनि करते; नूपुराभ्याम्—नूपुरों से; पद्भ्याम्—पाँवों से; प्रगृह्य—पकड़ कर; कनक—सोने के; उज्वल—चमकीले; रत्न—रत्नों से; मालाम्—हार; नूत्ने—नवीन; निवीय—करधनी से बाँध कर; परिधाय—पहन कर; च—तथा; कौशिक—रेशमी वस्त्रों की जोड़ी; अछये—उत्तम; स-व्रीड—लज्जालु; हास—हँसी से युक्त; वदना—मुख वाली; कवरी—बालों का गुच्छा; धृत—धारण किये; स्रक्—फूलों की माला ।

तभी मैं रंगशाला में गई। मेरे पाँवों के नूपुर मन्द ध्वनि कर रहे थे। मैं उत्तम कोटि के रेशम के नये वस्त्र पहने थी, जिसके ऊपर करधनी बँधी थी और मैं सोने तथा रत्नों से बना चमकीला हार धारण किये थी। मेरे मुख पर लजीली मुसकान थी और मेरे बालों में फूलों की माला थी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि श्री लक्ष्मणा यह स्मरण करके कि उसने भगवान् को किस प्रकार प्राप्त किया अत्यन्त उत्तेजित थी, इसलिए वह अपनी सहज लज्जा भूल कर अपनी सफलता का बखान करने लगी।

उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड-  
 गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ।  
 राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारे-  
 रंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥

**शब्दार्थ**

उन्नीय—उठाकर; वक्त्रम्—मुखमंडल; उरु—प्रचुर; कुन्तल—बालों के गुच्छों से; कुण्डल—कान के आभूषणों के; त्विट्—तथा तेज से; गण्ड-स्थलम्—गाल; शिशिर—शीतल; हास—हँसी से युक्त; कट-अक्ष—तिरछी चितवनों के; मोक्षैः—डालने से; राज्ञः—राजाओं को; निरीक्ष्य—देख कर; परितः—चारों ओर; शनकैः—धीरे-धीरे; मुरारेः—कृष्ण के; अंसे—कंधे पर; अनुरक्त—आकृष्ट; हृदया—हृदय वाली; निदधे—मैंने पहना दिया; स्व—अपना; मालाम्—गले का हार ।

मैंने अपना सिर उठाया, जो मेरे प्रचुर बालों के गुच्छों तथा मेरे गालों से परावर्तित मेरे कुण्डलों की चमक के तेज से घिरा था। मैंने शान्त भाव से मन्द-हास के साथ इधर-उधर दृष्टि फेरी। तब चारों ओर सारे राजाओं को देखते हुए, मैंने धीरे से हार को मुरारी के कन्धों ( गले ) पर डाल दिया, जिसने मेरे मन को हर रखा था।

तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यान्कादयः ।

निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायिका जगुः ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

तावत्—तभी; मृदङ्ग-पटहाः—मृदंग तथा पटह; शङ्ख—शंख; भेरी—दुन्दुभी; आनक—बड़े बड़े सैन्य नगाड़े; आदयः—इत्यादि; निनेदुः—गूँजने लगे; नट—पुरुष नर्तक; नर्तक्यः—तथा नर्तकियाँ; ननृतुः—नाचने लगीं; गायिकाः—गाने वाले; जगुः—गाने लगे।

तभी शंखों तथा मृदंग, पटह, भेरी और आनक नगाड़ों एवं अन्य वाद्य जोर-जोर से बजने लगे। नट तथा नर्तकियाँ नाचने लगे और गवैये गाने लगे।

एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः ।

न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥

### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; वृते—चुने जाने पर; भगवति—भगवान् के; मया—मेरे द्वारा; ईशे—स्वामी; नृप—राजाओं के; यूथ-पाः—नायक; न सेहिरे—सहन नहीं कर सके; याज्ञसेनि—हे द्रौपदी; स्पर्धन्तः—लड़ने-झगड़ते; हृत्-शय—काम द्वारा; आतुराः—पीड़ित।

हे द्रौपदी, मेरे द्वारा भगवान् का चुना जाना प्रमुख राजाओं को सहन नहीं हो सका। वे कामातुर होने के कारण लड़ने-झगड़ने लगे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि काम के दूषण से वे राजा मूर्खतापूर्वक भगवान् से झगड़ने लगे, यद्यपि उन्होंने उनकी परम शक्ति देख ली थी।

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ।

शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तथावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥

### शब्दार्थ

माम्—मुझको; तावत्—उस समय; रथम्—रथ पर; आरोप्य—चढ़ाकर; हय—घोड़ों में; रत्न—रत्न; चतुष्टयम्—चार; शार्ङ्गम्—शार्ङ्ग नामक अपना धनुष; उद्यम्य—तैयार करके; सन्नद्धः—कवच पहन कर; तस्थौ—खड़े रहे; आजौ—युद्धभूमि में; चतुः—चार; भुजः—भुजाओं वाले।

तत्पश्चात् भगवान् ने मुझे चार अतीव उत्तम घोड़ों से खींचे जाने वाले अपने रथ में बिठा लिया। अपना कवच पहन कर तथा अपना शार्ङ्ग धनुष तैयार करके, वे रथ पर खड़े हो गये और युद्धभूमि में उन्होंने अपनी चार भुजाएँ प्रकट कीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् कृष्ण ने अपनी चार भुजाओं में से दो से अपनी पत्नी का आलिंगन किया और अन्य दो से धनुष-बाण ग्रहण किया।



दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् ।  
मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥

**शब्दार्थ**

दारुकः—दारुक ( कृष्ण के सारथी ) ने; चोदयाम् आस—हाँक दिया; काञ्चन—सोने के; उपस्करम्—किनारों वाला; रथम्—रथ; मिषताम्—उनके देखते-देखते; भू-भुजाम्—राजाओं के; राज्ञि—हे रानी; मृगाणाम्—पशुओं के; मृग-राट्—पशुओं का राजा, सिंह; इव—सदृश।

हे रानी, सारथी दारुक राजाओं के देखते-देखते भगवान् के सुनहरे किनारों वाले रथ को उसी तरह हाँक ले गया, जिस तरह छोटे छोटे पशु निस्सहाय होकर सिंह को देखते रह जाते हैं।

तेऽन्वसज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ।  
संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥

**शब्दार्थ**

ते—वे; अन्वसज्जन्त—पीछा करते हुए; राजन्याः—राजागण; निषेद्धुम्—रोकने के लिए; पथि—रास्ते में; केचन—उनमें से कुछ; संयत्ताः—सन्नद्ध; उद्धृत—उठे हुए; इषु-आसाः—बाणों वाले; ग्राम-सिंहा—गाँव के शेर ( कुत्ते ); यथा—जिस तरह; हरिम्—सिंह को।

राजाओं ने भगवान् का पीछा किया, जिस तरह सिंह का पीछा गाँव के कुत्ते करते हैं। कुछ राजा अपने धनुष उठाये हुए, उन्हें जाने से रोकने के लिए मार्ग में आ डटे।

ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ।  
निपेतुः प्रधने केचिदेके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥

**शब्दार्थ**

ते—वे; शार्ङ्ग—कृष्ण के धनुष से; च्युत—छोड़े गये, निकले; बाण—बाणों की; औघैः—बाढ़ से; कृत्त—घायल; बाहु—बाहुओं वाले; अङ्घ्रि—पैर; कन्धराः—तथा गर्दन; निपेतुः—गिरा दिया; प्रधने—युद्धस्थल में; केचित्—कुछ; एके—कुछ; सन्त्यज्य—त्याग कर; दुद्रुवुः—भाग गये।

ये योद्धा भगवान् के शार्ङ्ग धनुष द्वारा छोड़े गये बाणों से अभिभूत हो गये। कुछ राजाओं की भुजाएँ, टांगें तथा गर्दन कट गईं और वे युद्धभूमि में गिर पड़े। शेष लड़ना छोड़ कर भाग गये।

ततः पुरीं यदुपतिरत्यलङ्क तां  
रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ।  
कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां  
समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥

**शब्दार्थ**

ततः—तब; पुरीम्—नगरी; यदु-पतिः—यादवों के स्वामी; अति—अत्यधिक; अलङ्कृतम्—अलंकृत; रवि—सूर्य; छद—रोकते हुए; ध्वज—दंडों पर; पट—पताकाओं समेत; चित्र—विचित्र; तोरणाम्—तथा तोरण से युक्त; कुशस्थलीम्—द्वारका; दिवि—स्वर्ग में; भुवि—पृथ्वी पर; च—तथा; अभिसंस्तुताम्—प्रशंसित; समाविशत्—प्रवेश किया; तरणिः—सूर्य; इव—सदृश; स्व—अपने; केतनम्—धाम में।

तब यदुपति ने अपनी राजधानी कुशस्थली ( द्वारका ) में प्रवेश किया, जो स्वर्ग में तथा पृथ्वी पर प्रशंसित है। नगर को पताकाओं से युक्त दंडों से सजाया गया था, जो सूर्य को ढक दे रहे थे तथा शानदार तोरण भी लगाये गये थे। जब कृष्ण ने प्रवेश किया, तो वे ऐसे लग रहे थे, मानो सूर्य देव अपने धाम में प्रवेश कर रहे हों।

तात्पर्य : सूर्य का धाम पश्चिमी पर्वत मालाएँ हैं जहाँ हर संध्या को सूर्य अस्त होता है।

पिता मे पूजयामास सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।

महार्हवासोऽलङ्कारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

पिता—पिता ने; मे—मेरे; पूजयाम् आस—पूजा की; सुहृत्—अपने मित्रों; सम्बन्धि—सम्बन्धी लोगों; बान्धवान्—तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों की; महा—अत्यन्त; अर्ह—मूल्यवान्; वासः—वस्त्रों; अलङ्कारैः—तथा आभूषणों से; शय्या—पलंग; आसन—सिंहासन; परिच्छदैः—तथा अन्य साज-सामान से।

मेरे पिताजी ने अपने मित्रों, परिवार वालों तथा मेरे ससुराल वालों का सम्मान बहुमूल्य वस्त्रों, आभूषणों, राजसी पलंगों, सिंहासनों तथा अन्य साज-सामग्री से किया।

दासीभिः सर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ।

आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

दासीभिः—दासियों के साथ; सर्व—समस्त; सम्पद्भिः—धन से; भट—पैदल सिपाहियों से; इभ—हाथी पर सवार सैनिकों से; रथ—रथ पर सवार सैनिकों से; वाजिभिः—तथा घोड़े पर सवार सैनिकों से; आयुधानि—हथियार; महा-अर्हाणि—अत्यन्त मूल्यवान्; ददौ—दिया; पूर्णस्य—परम पूर्ण भगवान् को; भक्तितः—भक्तिवश।

उन्होंने परमपूर्ण भगवान् को भक्तिपूर्वक अनेक दासियाँ दीं, जो बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत थीं। इन दासियों के साथ अंगरक्षक थे, जिनमें से कुछ पैदल थे, तो कुछ हाथियों, रथों और घोड़ों पर सवार थे। उन्होंने भगवान् को अत्यन्त मूल्यवान् हथियार भी दिये।

तात्पर्य : भगवान् अपने आप में पूर्ण हैं। उन्हें अपनी तुष्टि के लिए कुछ भी नहीं चाहिए। यह जानते हुए भी भक्त प्रेमवश, भक्तितः अर्थात्, किसी भौतिक लाभ की आशा किये बिना भेंट चढ़ाता है। और भगवान् प्रेमपूर्वक चढ़ाई छोटी से छोटी भेंट—फूल, तुलसी दल तथा जल—को स्वीकार कर लेते

हैं।

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ।

सर्वसङ्गनिवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥

### शब्दार्थ

आत्म-आरामस्य—आत्मतुष्ट की; तस्य—उस; इमाः—ये; वयम्—हम; वै—निस्सन्देह; गृह—घर में; दासिकाः—दासियाँ; सर्व—सभी; सङ्ग—भौतिक संगति के; निवृत्त्या—परित्याग से; अद्धा—प्रत्यक्ष; तपसा—तपस्या द्वारा; च—तथा; बभूविम—बन गई हैं।

इस तरह समस्त भौतिक संगति का परित्याग करके तथा तपस्या करके, हम सारी रानियाँ आत्माराम भगवान् की दासियाँ बन चुकी हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के मतानुसार श्रीमती लक्ष्मणा को अत्यन्त द्विविधा हो गई जब उन्हें ध्यान आया कि वे अपने विषय में इतनी देर से बातें कहे जा रही हैं, इसलिए उन्होंने यह श्लोक अपनी सौतों (सपत्नियों) की प्रशंसा करने के लिए कहा। लक्ष्मणा ने विनम्रतापूर्ण स्वीकार किया कि कृष्ण की रानियाँ सामान्य पत्नियों से सर्वथा भिन्न होने से अपने पति को अपने वश में न कर सकीं इसलिए वे अपने को उनकी दासियाँ ही कह सकती थीं। किन्तु वास्तव में भगवान् की रानियाँ तो उनकी अन्तरंगा ह्लादिनी शक्ति की प्रत्यक्ष अंशरूप हैं, अतएव वे अपने अपने प्रेम से उन्हें पूर्णतया वशीभूत किये थीं।

महिष्य ऊचुः

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा

ज्ञात्वाथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ।

निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः

पादाम्बुजं परिणनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥

### शब्दार्थ

महिष्यः ऊचुः—( अन्य ) रानियों ने कहा; भौमम्—भौम असुर को; निहत्य—मार कर; स—सहित; गणम्—अपने अनुचरों के; युधि—युद्ध में; तेन—उस ( भौम ) के द्वारा; रुद्धाः—बन्दी बनाई; ज्ञात्वा—जान कर; अथ—तब; नः—हमको; क्षिति-जये—( भौम द्वारा ) पृथ्वी पर विजय के समय; जित—पराजित; राज—राजाओं की; कन्याः—पुत्रियों को; निर्मुच्य—छुड़ाकर; संसृति—संसार से; विमोक्षम्—मोक्ष ( के स्रोत ); अनुस्मरन्तीः—निरन्तर स्मरण करती हुई; पाद-अम्बुजम्—उनके चरणकमल; परिणनाय—विवाह किया; यः—जो; आप्त-कामः—जिनकी सारी इच्छाएँ पहले से पूर्ण हो चुकी हैं।

अन्य रानियों की ओर से रोहिणीदेवी ने कहा : भौमासुर तथा उसके अनुयायियों का वध करने के बाद भगवान् ने हमें उस असुर के बन्दीगृह में पाया और वे यह समझ गये कि हम उन

राजाओं की कन्याएँ हैं, जिन्हें भौम ने पृथ्वी पर विजय करते समय पराजित किया था। भगवान् ने हमें बन्दी-गृह से मुक्त कराया और चूँकि हम भौतिक बन्धन से मोक्ष के स्रोत उन भगवान् के चरणकमलों का निरन्तर ध्यान करती रही थीं, इसलिए वे हमसे विवाह करने के लिए राजी हो गये, यद्यपि उनकी हर इच्छा पहले से पूरी रहती है।

तात्पर्य : रोहिणीदेवी उन नौ रानियों में से हैं, जिनसे द्रौपदी ने श्लोक ६ तथा ७ में प्रश्न किया था। इसलिए यहाँ पर मान लिया गया है कि वह अन्य १६,०९९ रानियों की ओर से बोल रही हैं। श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में इसकी पुष्टि की है।

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ।  
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥  
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।  
कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; वयम्—हम; साध्वि—हे सन्त स्वभाव वाली ( द्रौपदी ); साम्राज्यम्—समस्त पृथ्वी पर शासन; स्वा-राज्यम्—स्वर्ग के राजा इन्द्र का पद; भौज्यम्—भोग की असीम शक्ति; अपि उत—भी; वैराज्यम्—योगशक्ति; पारमेष्ठ्यम्—ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा का पद; च—तथा; आनन्त्यम्—अमरता; वा—अथवा; हरेः—भगवान् के; पदम्—धाम की; कामयामहे—कामना करती हैं; एतस्य—उन्के; श्री-मत्—दैवी; पाद—पैरों की; रजः—धूल; श्रियः—लक्ष्मी के; कुच—स्तन से; कुङ्कुम—सुगन्धित चूर्ण की; गन्ध—सुगन्ध से; आढ्यम्—समृद्ध, युक्त; मूर्ध्ना—अपने सिरों पर; वोढुम्—धारण करने के लिए; गदाभृतः—गदा चलाने वाले भगवान् कृष्ण के।

हे साध्वी, हमें पृथ्वी पर शासन, इन्द्र का पद, भोग की असीम सुविधा, योगशक्ति, ब्रह्मा का पद, अमरता या भगवद्धाम प्राप्त करने की भी इच्छा नहीं है। हम केवल इतना ही चाहती हैं कि भगवान् कृष्ण के उन चरणों की यशस्वी धूल को अपने सिर पर धारण करें, जो उनकी प्रियतमा के स्तन के कुंकुम की सुगन्धि से युक्त है।

तात्पर्य : राज् क्रिया का अर्थ है “शासन करना।” इसीसे साम्राज्यम् शब्द निकला है, जिसका अर्थ है “समूची पृथ्वी पर शासन” तथा स्वाराज्यम् का अर्थ है “स्वर्ग पर शासन।” भौज्यम् शब्द भुज् क्रिया से (“भोग करना”) निकला है अतएव इसका अर्थ हुआ इच्छानुसार भोग करने की क्षमता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने विराट् की व्याख्या विविधं विराजते (अनेक प्रकार का ऐश्वर्य भोगने वाला) पद के रूप में की है और आठ सिद्धियों—अणिमा इत्यादि—का विशेष उल्लेख किया है।

श्रील श्रीधर स्वामी ने इन शब्दों की वैकल्पिक व्याख्या की है। उनका कहना है कि बह्वृत्त

ब्राह्मण के अनुसार ये चारों शब्द चारों दिशाओं के ऊपर पूर्णसत्ता की शक्ति को बतलाने वाले हैं—  
साम्राज्य—पूर्व के लिए, भौज्य—दक्षिण के लिए, स्वाराज्य—पश्चिम के लिए और वैराज्य—उत्तर दिशा  
के लिए।

भगवान् कृष्ण की रानियाँ स्पष्ट कहती हैं कि उन्हें इनमें से एक भी शक्ति की इच्छा नहीं है, यहाँ तक कि ब्रह्मा के पद, मुक्ति या भगवद्धाम में जाने तक की इच्छा नहीं है। वे तो श्रीकृष्ण के उन चरणकमलों की धूल की ही कामना करती हैं, जिनकी पूजा स्वयं लक्ष्मीजी करती हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती हमें बतलाते हैं कि यहाँ जिस लक्ष्मी का उल्लेख है, वह नारायण-पत्नी लक्ष्मी नहीं हैं। आचार्य की व्याख्या है कि देवी लक्ष्मी को दीर्घकालीन तपस्या के बावजूद कृष्ण की प्रत्यक्ष संगति प्राप्त नहीं हो पाई थी, जैसाकि उद्धव कहते हैं—*नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः* ( भागवत १०.४७.६० )। प्रत्युत, यहाँ जिस लक्ष्मी का प्रसंग आया है, उसकी पहचान *बृहद्गौतमीय तंत्र* द्वारा होती है—

*देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।*

*सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥*

“दिव्य देवी श्रीमती राधारानी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष अर्धांगिणी हैं। वे समस्त लक्ष्मियों में प्रमुख हैं। उनमें सर्वाकर्षक भगवान् को आकृष्ट करने के लिए समस्त आकर्षण हैं। वे भगवान् की आदि अन्तरंगा शक्ति हैं।”

**व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ।**

**गावश्चारयतो गोपाः पदस्पर्श महात्मनः ॥ ४३ ॥**

#### शब्दार्थ

व्रज—व्रज की; स्त्रियः—स्त्रियाँ; यत्—जैसा; वाञ्छन्ति—चाहती हैं; पुलिन्दः—व्रज में पुलिन्द आदिवासी स्त्रियाँ; तृण—घास; वीरुधः—तथा पौधों से; गावः—गौवें; चारयतः—चराने वाले; गोपाः—ग्वालबाल; पाद—पाँवों के; स्पर्शम्—स्पर्श; महा-आत्मनः—परमात्मा के।

हम भगवान् के चरणों का वही स्पर्श चाहती हैं, जो व्रज की तरुणियों, ग्वालबालों तथा आदिवासिनी पुलिन्द स्त्रियाँ चाहती हैं—वह है, भगवान् द्वारा अपनी गौवें चराते समय पौधों तथा घास पर उनके द्वारा, छोड़ी गई धूल का स्पर्श।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती हमें उस ईर्ष्या या स्पर्धा का स्मरण दिलाते हैं, जो द्वारका की

रानियों तथा व्रज की गोपियों में सदैव बनी रही। गोपियाँ द्वारका की सुसंस्कृत स्त्रियों को श्रीकृष्ण पर अपना अधिकार बनाये रखने में सबसे बड़ा खतरा मानती थीं। उन्होंने इस चिन्ता को उद्धव के समक्ष स्वीकार किया है—*कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः। नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य*—राज्य जीतने, अपने शत्रुओं का वध कर लेने तथा राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह कर चुकने के बाद कृष्ण भला यहाँ क्यों आने लगे? (भागवत १०.४७.४५)

रुक्मिणी तथा अन्य सात प्रमुख सपत्नियाँ अपने को द्वारका में कृष्ण के साथ अपने सम्बन्धों के कारण इतनी सौभाग्यशालिनी मानती थीं कि वे नहीं चाहती थीं कि वे ऐसे दिखें जैसे वे वृन्दावन में थे। किन्तु सोलह हजार अवर रानियाँ उद्धव द्वारा श्री राधा के सर्वोच्च गुणों का वर्णन सुनने के बाद चाहने लगीं कि उन्हें श्रीकृष्ण के पैरों की उस धूलि का स्पर्श हो पाये जो वृन्दावन की घास तथा पौधों पर गिरती है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि कुछ टीकाकार इसी को वह कारण बताते हैं जिससे *मौषल लीला* के बाद अर्जुन से सोलह हजार रानियाँ कृष्ण द्वारा सोलह हजार गोपों के वेश में हरण करके गोकुल ले जाई गईं।

*इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “कृष्ण की रानियों से द्रौपदी की भेंट” नामक तिरासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।*